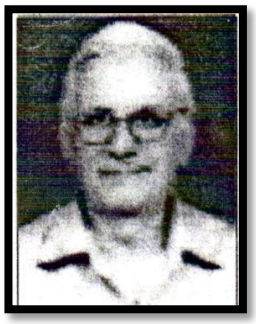

हिन्दी दिवस पर विशेष
बहु आयामी प्रतिभा के धनी संत गंगादास

डॉ0 चन्द्र पाल शर्मा

जो लोग अपने पूर्वजों को भूल जाते हैं उनका अतीत धूमिल हो जाता है। कभी मेरठ जनपद के भाग रहे रसूलपुर–बहलोलपुर में सन् 1823 ई0 को जन्मे 'गंगाबख्श' (बाद में संत गंगादास) भी अपनी मृत्यु के लगभग 75–80 वर्ष तक साहित्य–समाज के द्वारा अपरिचित ही रहे। संत गंगादास को साहित्य–जगत में स्थापित करने का कार्य मेरठ के दो सपूतों – आचार्य 'क्षेमचन्द्र सुमन' व डॉ0 जगन्नाथ शर्मा 'हंस' ने किया। आचार्य 'क्षेमचन्द्र सुमन' ने मेरठ से प्रकाशित पत्रिका 'साहित्यिक चेतना' में संत गंगादास पर पहला लेख लिखा और फिर अपने अनुपम ग्रन्थ 'दिवंगत हिन्दी–सेवी' में संत गंगादास पर महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। डॉ0 जगन्नाथ शर्मा 'हंस' ने सन् 1970 ई0 में संत गंगादास के काव्य पर प्रथम शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। फिर तो हंस जी के निर्देशन में सोलह शोधार्थियों ने संत गंगादास के साहित्य पर अपने–अपने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये। दुःख की बात है कि हिन्दी के इतिहास–लेखकों ने संत गंगादास का उल्लेख तक नहीं किया है। मेरा स्वयं का जन्म बुलन्दशहर जनपद का है। मुझे भी अपने जनपद से प्रसिद्ध कवि सेनापति के प्रतिशोधार्थियों की उपेक्षा ने आहत किया था। अतः मैनें उस उपेक्षा को दूर करते हुए, 'ऋतु वर्णन परम्परा और सेनापति का काव्य' विषय पर अपना शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत किया था, जो सेनापति के काव्य पर पहला शोध–प्रबन्ध था। अब तो अनेक शोध–प्रबन्ध आ गए हैं। मैनें सन् 1972 ई0 में अपने शोध–प्रबन्ध की भूमिका में लिखा था – "जिस विषय में शोध एवं शोधेतर कार्य मात्रा बहुत विशाल है, उस विषय के शोधार्थियों से सेनापति की घोर उपेक्षा पर मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। सम्भवतः कवि के काव्य की विविध पक्षीय गम्भीरता से जूझने का साहस हिन्दी के किसी शोध–छात्र अथवा आलोचक को नहीं हुआ।" आशीष स्वरूप 'दो शब्द' लिखते समय पूज्य गुरुदेव डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री ने लिखा था– "सेनापति के जनकवि रूप की घोर उपेक्षा करते हुए पं0 रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें रीतिकाल के प्रर्वतक कवि का शीर्ष स्थान प्रदान न कर जो अन्याय किया था, शोधक ने इस त्रुटि का परिमार्जन ऐसे सशक्त तर्कों के आधार पर किया है कि शोध–परीक्षक की लेखनी बोल उठी– "मैं शोध छात्र से पूर्णतया सहमत हूँ कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकालीन कवियों क साथ न्याय नहीं किया है। गोस्वामी तुलसीदास को कसौटी मानकर रीतिकाल के सभी कवियों को उसी पर कस दिया है।"

ठीक ऐसा ही संत गंगादास के सम्बन्ध में हुआ है। डॉ0 जगन्नाथ शर्मा 'हंस' के शोध परीक्षक, डॉ0 राम कुमार वर्मा ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था– "ज्ञान, भक्ति और काव्य की दृष्टि से संत कवि गंगादास विशेष प्रतिभावान रहे हैं, परन्तु इनका काव्य अनुपलब्ध होने के कारण

हिन्दी–साहित्य के इतिहास में इनका उल्लेख नहीं हो सका था।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा– "हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका के अतिरिक्त संत काव्य की सौन्दर्य दृष्टि और कला पर संत गंगादास का काव्य सुंदर प्रकाश डालता है। दूसरे परीक्षक डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने अपना मत इस प्रकार दिया– "संत कवि गंगादास का काव्य भारतेन्दु पूर्व खड़ी बोली हिन्दी काव्य का उच्चतम निदर्शन है और हिन्दी–साहित्य के इतिहास की अनेक पुरानी मान्यताओं के परिवर्तन का स्पष्ट उद्घोष भी करता है।" पदमश्री आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन लिखते हैं – "संत गंगादास खड़ी बोली के पितामह, आधुनिक काव्य के प्रेरणा स्रोत और कुरुप्रदेश के गौरव हैं।" कबीर का फक्कड़पन सर की भक्ति तुलसी का समन्वय केशव की छन्द योजना और बिहारी जी की कला एक ही स्थान पर देखनी हो, तो संत गंगादास का काव्य उसका उदात्त उदाहरण है।"

हिन्दी–साहित्य का सामान्य विद्यार्थी यही जानता आया है कि खड़ी बोली साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से हुआ, किन्तु भारतेन्दु का जन्म संत गंगादास के जन्म के 27 वर्ष बाद हुआ है। भारतेन्दु ने बड़े संकोच व भय के साथ सन् 1881 में खड़ी बोली में 'भारतमित्र' में प्रकाशन के लिए कविता भेजी थी, जो बहुत ही सामान्य स्तरीय रचना थी। इस समय संत गंगादास की आयु 58 वर्ष थी और वे खड़ी बोली में विविध विषयों पर श्रेष्ठ काव्य रचना कर रहे थे। अतः हिन्दी के आधुनिक पाठक का यह दायित्व है कि वह उपरिलिखित आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन के कथन को हिन्दी के छात्रों तक पहुँचाए कि खड़ी बोली काव्य के प्रथम रचनाकार संत गंगादास हैं।

डॉ0 जगन्नाथ शर्मा ने संत गंगादास की हस्त लिखित पाण्डुलिपियों एवं प्रकाशित पुस्तकों की सूची देते हुए उनकी संख्या क्रमशः 21 व 15 बतायी है। इतने विस्तृत साहित्य पर एक लघु पत्रिका के लिखे गए छोटे से लेख में कुछ सारवान लिखना सहज कार्य नहीं है।

संत गंगादास के काव्य में भक्ति, दार्शनिकता, बैराग्य, गुरु–महिमा, रहस्यवाद, लोक साहित्य, समाज–सुधार, नीति आदि के विविध रूपों का विस्तार से वर्णन हुआ है। उनका काव्य गम्भीर से गम्भीर अध्येता के लिए भी चिन्तन का विषय है और सामान्य से सामान्य पाठक को भी अपने साथ जोड़ने की सामर्थ्य रखता है। लोक–साहित्य से जुड़ा एक छंद देखिए–

लगी आँख किसी कंगाल की, सो गया स्वप्न आया है। (टेक)
भूखा मरता जन्म–भिखारी।
भया स्वप्न में छत्तर धारी।
दिया हुक्म सज गई सवारी।
गज रथ घोड़ा पालकी, सिर छत्तर की छाया है।।

हमने बचपन में अपने स्वर्गीय पिता श्री से इसी प्रकार की एक रागिनी सुनी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं –

किसी महानिपट कंगाल को मिल गई स्वप्न में माया। (टेक)

घर में रानी चन्द्रमुखी है।

बेटा–पोते सभी सुखी हैं।

मार के राजा करें दुखी हैं।

सो गया स्वप्न आया

किसी महानिपट कंगाल को मिल गई स्वप्न में माया। (टेक)

हमारी संस्कृति में गुरु का बहुत महत्त्व है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समकक्ष बताया है। कबीर तो गुरु को ईश्वर से पहले प्रणम्य मानते हैं। 'आचार्य देवोभव' के मानने वाले संत गंगादास भी गुरु को महा मोह के सिन्धु से पार लगाने वाले मानते हैं।

बह जाते सतगुरु तार दिये।

महा मोह सिन्धु की धारा।।

उनका विश्वास है कि संसार रूपी नौका को गुरु ही किनारे लगा सकता है।

बिंन सतगुरू कोई पार लगैया।

ना नैया ना मिले खिवैया।

'गंगादास' सत्य कहूँ भैया।

भक्ति में कवि का मन रमता है। कवि निर्गुण–सगुण के खेमे में अपने आराध्य को नहीं बाटता। ईश्वर के दोनों रूप ही उसका मन मोह लेते हैं। वह गोस्वामी तुलसीदास के मत से सहमत है– "अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।" उसकी तो केवल इतनी इच्छा है।

राजपाट धन माल ना चाहिए, ना सुख भोग विलास।

जो पिया मिलें यही वर माँगू, बसो हमारे पास।।

तुलसी से तुलना करके देखिए –

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निर्वान।

जनम–जनम रति राम पद यह वरदान न आन।।

भगवान से भक्त व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ता है। कबीर अपने को 'राम की बहुरिया' कहते तो तुलसी को 'राम का गुलाम' होने का गर्व है। मीरा तो डंके की चोट कहती है कि 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।' इसी प्रकार संत गंगादास भी अपने परमात्मा रूपी पति के वियोग से क्लेश पाते हैं –

सजन बिन सूने सारे देस, सखी मैं कैसे भरूं क्लेश।।टेक।।

खोज फिरी पिया कहीं न पाये, घर–घर नाना भेस।।

कवि का भगवान संसार के कण–कण में व्याप्त है, वह उसकी शरण में ही रहना चाहता है। अतः वह हर समय प्रिय के दर्शन की ललक लिए रहता है –

उठकर झटपट पट खोल पिया, तेरे दर्शन की प्यासी मैं।

कवि की दर्शन की लालसा पूरी होती है। उसे यह अवसर अपने पूर्व जन्मों के पुण्यों का फल प्रतीत होता है। अतः प्रियतम बसन्त के त्यौहार पर उसके घर आते हैं –

मेरे पूरन पिछले भागरी, पिया घर आये फागन में।

परन्तु इस प्रियतम का पाना इतना सरल नहीं है। कबीर मानते हैं– 'सीस उतारै भुई धरै तब बैठे घर माँहि' प्रियतम के घर में प्रवेश के लिए सर्वस्व–न्यौछावर करना पड़ता है–

सिर उतार कर घर जाते हैं।

जग में जीतेई मर जाते हैं।

इश्क का घर वोई पाते हैं।

फिर मौज है बारहमास की, वहाँ कभी ठगै माया ना।

कवि अपने इष्ट के सामने अपनी दीनता प्रकट करते हुए, अपने को उसका पशु मान लेता है। अब उसके ऊपर निर्भर करता है कि वह चाहे बेच दे, बाँध ले, खोल दे, उसे कोई गुरेज नहीं है –

उजर नहीं है आपसे, बेचो या लो मोल।

हाथ आपके नाव है, बाँधों या दो खोल।।

बाँधो या दो खोल पशु हैं आज तुम्हारे।

जो चाहो सो करो दास महाराज तुम्हारे।।

जगन्नाथ दास रत्नाकर की गोपियाँ कृष्ण को संदेश भेजते समय कहती हैं –

भली है, बुरी है, सलज है, निलज है, जो कहौ, सो निहारी है।

ये परिचारिका तिहारी है।

भक्ति का अन्तिम पड़ाव वैराग्य है। सबसे पहले जगत् के मिथ्यात्व का अनुभव करना होता है–

सब जगत काल का चारा, कोई अमर रहे ना रहे गये।

सारा संसार माया का खेल है। अतः पहले वैराग्य लेना पड़ता है, तभी सन्यास का अवसर मिलता है, व्यक्तिक्रम उचित नहीं है–

जब तलक तीव्र वैराग्य नहीं, पागल! सन्याय लिया क्यों?

माया ही सारे संसार को घुमा रही है। कबीर को माया महा ठगनी लगती है आर तुलसी मोर–तोर का माया मानते हैं। संत गंगादास को सारा जगत माया के चक्र में बहता प्रतीत होता है–

सब जगत आत्माराम की, माया में बहे फिरैं हैं।

संत गंगादास इस माया को जगठगनी मानते हैं– 'जग ठगनी के परताप में, कर लिए नुकसान घरी मैं' यह सारा संसार स्वप्नवत् है, माया के कारण ही सत्य भासित हो रहा है– 'सब जग सुपने की माया है।'

वैराग्य से सन्यास की भावना जाग्रत होती है, तो सन्यास व्यक्ति को दार्शनिक बना देता है। इस स्थिति में पहुँचकर संत गंगादास कहते हैं –

व्यापक हूँ सब संसार में, मुझमें संसार नहीं है।

कवि वेद का पक्षधर है, योग व वेदान्त उसके प्रिय दर्शन हैं। अष्टाँग योग का अनेक पदों में वर्णन किया है। योग की शब्दावली का काव्य में खुल कर प्रयोग है –

पूरक, रेचक, कुम्भक करके।
सोह्म शब्द निशाना धरके।
जाय बसें बेगमपुर हर कै।।

सोह्म सोह्म शब्द अराधै।
भवरी कोई खेचरी साधे।
उड़ियान जलंधर मूलबन्द की।
निरखै है गति रवि चन्द की।।

साधना के उच्च शिखर पर पहुँचने के बाद कवि रहस्यवादी बन जाता है। वैराग्य में संसार असार लगता है, तो उसे यह शरीर मिट्टी का ढेला प्रतीत होने लगता है। उसकी जिज्ञासा प्रबल हो उठती है–

खबर नहीं हम कहाँ से आये।
कहाँ जायेंगे, भेद न पाये।
ना मालूम कहाँ भरमाये।
ए सोच है बारम्बार हमें, पहले घर बार कहाँ है?
यह सोच बार–बार विचलित करती है–
जड़ जगत कहाँ से आया और फिर कहाँ जाता है?

ऐसे में कवि संसार को जगाने का कार्य करना चाहता है। वह मन की चंचलता को समझ गया है– 'मन ने बड़े नाच नचाये।' सभी भक्त मन के नचाये जाने से परेशान रहे हैं। सूर लिखते हैं– अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।' अतः कवि अपने मूर्ख मन को रोकने का प्रयास करता है। वह आत्म निरीक्षण करता है।

मत तकै पराये दोष तू, सब दाष देख आपे मैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि संत गंगादास संत परम्परा के श्रष्ठ कवि कबीर से बहुत प्रभावित हैं। अतः भक्ति, वैराग्य, दर्शन के साथ वे समाज–सुधारक के रूप में भी दिखाई देते हैं। वह कबीर के समान हिन्दू–मुसलमान दोनों पर चोट करते हैं। उसे न हिन्दुआ का बाह्याडम्बर पसन्द है और न मुसलमानों की पाँच वक्त की नमाज, रोजा, कलमा, अजान अच्छी लगती है –

हिन्दू मिथ्यापन में हारे तुर्क हार गये तूफान में।

ना ऊँचे पै बसै खुदा ना समझो वहाँ पर गहरा है।
मुल्ला पढ़े मुनारे पै तू ऐसा क्या वो बहरा है।।

कबीर भी ठीक ऐसा ही कह गये थे –

मस्जिद चढ़ के, मुल्ला पुकारे क्या साहिब तेरा बहरा है?

वह पूछता है कि 'खुदा फकत मक्केई रहता है।' ऐसा नहीं है, वह सब जगह समाया हुआ है। खुदा को पाने के लिए अपने अहंकार का त्याग करना पड़ता है –

खुदी जाय तब खुदा को पावे।
खुदी में खुदा हाथ नहीं आवे।।

कबीर भी यही कहते हैं– 'जब मैं था तब हरि नाहिं अब हरि मैं नाहिं।' ये अहंकारी जीव आशा रूपी गम्भीर नदी के प्रवाह में बह जाते हैं –

'आसा गम्भीर नदी में, बह गये जीव हंकारी।'

हिन्दुओं को अपनी जाति, आश्रम व वर्ण व्यवस्था पर बड़ा गर्व रहता है। उनको समझाते हुए गंगादास कहते हैं –

देह वर्ण आश्रम जात पै, मत अटकै सोग सहेगा।

कबीर ने ब्राह्मण–तुर्क, पुरोहित–मुल्ला को खुलकर फटकारा था। संत गंगादास गेरुए कपड़े पहनकर सन्यासी समझने वालों को फटकारते हुए कहते हैं –

दिल रंगा नहीं उस रंग में, क्या है कपड़े रंगने में।

समाज–सुधारक का काम केवल दोष–दर्शन करना ही नहीं होता, अपितु वह मार्ग भी बताता है। संत गंगादास भी अनेक नीतिपरक बात कहते हैं –

खोटे की संगत दुखदाई।

जो कोई करै सो भरे तबाई।

भला करे सो देय बुराई।

अतः अच्छे कर्म करो, बुरे कर्मों का फल तो बुरा ही मिलेगा –

बोए पेड़ बबूल के, खाना चाहे दाख।

ये गुन मत परकट करै, मन के मन में राख।।

व्यक्ति यदि सुख चाहता है तो वह जीवों पर दया करे। सत्य को व्यवहार में लाये, संतों की सेवा करे, पर–उपकार में लगा रहे –

चारों, चारों युग से, सखदायक हैं चार।

दया, सत्य अरु संत ये, चौथ पर–उपकार।।

अतः मनुष्य को पाप या पापी से नहीं, अपितु उस की पड़ौस से भी बचकर रहना चाहिए –

पापी के कोई भूलकर, मत ना बसो पड़ौस।

नीच जनों के संग में, निर्दोशी गहें दोष।।

गंगादास कहैं नीच संग डूबें परतापी।

तजै ग्राम, घर, देस, जहाँ बसते हों पापी।।

मनुष्य को मान–बड़ाई, ईर्ष्या, आशा और तृष्णा को त्यागकर ही जप–तप में लगना चाहिए। क्रोध, लोभ, मोह और काम को तस्कर समझकर त्याग देना चाहिए। तुलसी कहते हैं – 'धीरज–धरम मित्र औ नारो। आपदकाल परखिये चारी।। संत गंगादास भी इसी सुर में सुर मिलाते हैं –

इनकू चाहिए जाँचना वक्त पड़े जब आन।

धर्म, मित्र, धीरज, वधू, विपता में पैछान।।

कवि अपने काल की दशा को देखकर बहुत दुःखी है। उसे सब पथ से भटके दिखाई दे रहे हैं –

पाप परायन नर अरु नारी।

भये गयी सब की मति मारी।

जोगी, सन्यासी, ब्राह्मचारी।

बुरे कर्म से ना डरते हैं, कहीं लेश रही ना धरम की

समस्त प्रजा पाप से पीड़ित है। उनका उद्‌देश्य केवल पेट भरना रह गया है। ऊँच–नीच कर्मों का ध्यान ही मिटा दिया है। धर्म–कर्म सब समाप्त हो गए हैं, पुत्र पिता स वाद–विवाद करते हैं। एक–दूसरे का सम्मान समाप्त हो गया। इसे कलियुग का प्रताप ही कहेंगे –

नीति हीन राजा अन्याई।

वेद विरोधी सठ दुखदाई।

पन्थ चले अब तौल ना पाई।

कवि का भाव–पक्ष का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसने सभी रसों पर लेखनी चलाई है। भाषा कहीं संस्कृत निष्ठ है, तो कहीं एकदम बोलचाल की है। कवि खड़ी बोली का सर्वप्रथम कवि है, किन्तु उसमें हरियाणवी व पंजाबी के पुट को भी देखा जा सकता है। कहीं–कहीं ठेट देशज शब्दों का प्रयोग है। शब्द निर्माण की क्षमता भी है। वह सुहागन की तर्ज पर विलोम के रूप में दुहागन का प्रयोग करता है। कभी के लिए बहुधा कदी का प्रयोग हुआ है। अनेक अलंकार देखे जा सकते हैं। अमिधा में कहने के साथ लक्षणा–व्यंजना का भी खुलकर प्रयोग हुआ है। छन्दों में तो वह केशव के वंशज मालूम पड़ते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के इस प्रथम कवि के काव्य में प्रौढ़ता है, विविध विषयों का सविस्तार वर्णन हुआ है। अतः इस कवि को उसका उचित स्थान मिलना चाहिए।

सम्पर्क सूत्र : सहयोग, सर्वोदय नगर

पिलखुवा – 245304, स्वरदूत – 9411054501, 8171969096